National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 28-12-2020; Accepted: 13-01-2021; Published: 28-01-2021
www.multidisciplinaryjournal.org
Volume 6, Issue 1, 2021, Page No. 26-28

कौटिल्य का मण्ड़ल सिद्धान्त

डा. मनीषा दीवान
असिस्टेट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, एस.एन.सेन बा.वि.पी.जी. कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय राजाओं के सम्मुख एकराट् बनने का आदर्श वैदिककाल से ही चला आ रहा है। दिग्विजय की इच्छा रखने वाला राजा आत्मरक्षा के लिये व शत्रु को पराजित करने के अभिप्राय से अपने पड़ौसी राज्यों से परस्पर मैत्री सम्बन्ध भी स्थापित करता था। अतः हमारे राजनैतिक चिन्तकों ने अन्तर–राज्यीय नीति के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये इनमें से एक प्रमुख सिद्धान्त है–मण्ड़ल सिद्धान्त। इस प्रकार दिग्विजय की अवधारणा ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया।
मण्ड़ल सिद्धान्त कब प्रतिपादित किया गया यह निश्चित करना कठिन है वैदिक साहित्य में राजमण्ड़ल का उल्लेख नहीं है। रामायण से भी इस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। हाँ महाभारत में इस सिद्धान्त का यत्र–तत्र विवरण मिलता है। महाभारत के सभा पर्व, आश्रमवासिक पर्व व शान्ति पर्व में इसका उल्लेख है।
महाभारत के शान्ति पर्व में ''द्वादश मण्ड़ल उससे सम्बन्धित 72 विचारणीय एवं प्रतिकार योग्य विषयों का उल्लेख मिलता है।''[1]
मनु ने भी मण्ड़ल या राजमण्ड़ल की सम्यक विवेचना की है। उनके अनुसार ''विश्व में मण्ड़ल में बारह प्रकृतियाँ होती है।''[2]
कामन्दक ने अपने ''नीतिसार ग्रन्थ'' में पूर्वाचार्यो के मतों को व्यक्त करते हुए स्वयं द्वादश मण्ड़ल को मान्यता दी है। [3]
मण्ड़ल सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन कौटिल्य के अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण के दूसरे अध्याय में मिलता है।

मूल शब्द: मण्ड़ल सिद्धान्त, मण्ड़ल का अर्थ एवं उद्देश्य, मध्यम राजा

प्रश्तावना

शोधपत्र का उद्देश्य

कौटिल्य का मण्डल सिद्धान्त प्राचीन राजनीतिक कौशल का एक अद्भुत उदाहरण है। यह ''बारह राज्यों के वृत्तों'' पर आधारित है जिनके आधार पर कोई राज्य अपनी विदेश नीति व अन्य राज्यों के साथ अपने सम्बन्ध निर्धारित करता था। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य–कौटिल्य के मण्ड़ल सिद्धान्त का विवेचनापूर्ण अध्ययन कर उसकी युद्ध एवं कूटनीति के राजनीतिक विचारों को वर्तमान परिपेक्ष्य में समझने का प्रयत्न है।

मण्ड़ल का अर्थ एवं उद्देश्य

मण्ड़ल का अर्थ है

राज्यों का वृत अर्थात मण्ड़ल सिद्धान्त के अन्तर्गत 12 राजाओं को स्थान दिया जाता है। इसके केन्द्र में विजिगीषु का राज्य होता है। मण्ड़ल सिद्धान्त के मूल अंग चार प्रकार के होते है – मित्र, शत्रु, मध्यम तथा उदासीन। इस सिद्धान्त का मूल आधार यह है कि दो समीपवर्ती राज्य जिनकी सीमायें परस्पर मिलती है एक दूसरे के सहज शत्रु होते है। शत्रु राज्य के अनन्तर स्थित राज्य स्वभावत मित्र होते है। मध्यम राज्य उसे कहा जाता है जिसकी सीमाएँ शत्रु और मित्र दोनों ही राज्यों की सीमाओं से मिलती है। उदासीन राजा का राज्य इन तीनों से कुछ दूरी पर स्थित होता है। इन चारों प्रकार के राज्यों के परस्पर सम्बन्धों की विवेचना मण्ड़ल सिद्धान्त के अन्तर्गत की जाती है।

मण्ड़ल सिद्धान्त का उद्देश्य है

शक्ति सन्तुलन यह विभिन्न राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करता है अर्थात कोई राष्ट्र इतना प्रबल न हो सके कि वह दूसरे की स्वतंत्रता नष्ट कर सके। मनु ने यह तथ्य इस प्रकार कहा है ''प्रत्येक शासक का यह प्रयत्न होना चाहिये कि अन्य शासक चाहे वह मित्र हो अथवा शत्रु या उदासीन। उसकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली न हो सके व न ही उसकी प्रगति अवरुद्व कर सके।''[4]
इसी प्रकार सोमदेव ने कहा है कि ''न मां परोहन्तु नाह परं हन्तु च शक्तः''।[5] इस प्रकार हमारे राजनीतिकारों ने राज्यों में शक्ति सन्तुलन के विचार को ध्यान में रखकर इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

1. मनुस्मृति–अध्याय 7, श्लोक 177
2. नीतिवाक्यामृतम अध्याय 29, श्लोक 49

राजमण्ड़ल के घटक

साधारणत

मण्ड़ल के अन्तर्गत बारह राजाओं को स्थान दिया जाता है। इसके केन्द्र में ''विजिगीयु'' होता है। जिसके सम्बन्ध में अन्य राजाओं का नामकरण किया जाता है।
विजिगीषु के अग्रभाग में जिस राजा की सीमा उसके राज्य से मिलती है उसे अरि अथवा शत्रु कहा जाता है। तत्पश्चात् क्रमशः मित्र, अरि मित्र, मित्र–मित्र तथा अरिमित्र मित्र राज्य होते है। इसी प्रकार 'विजिगीषु' के पृष्ठ भाग में क्रमशः शत्रु तथा मित्र राज्यों की परम्परा होती है परन्तु अग्रभाग के राजाओं से भिन्नता व्यक्त करने के लिये उनका नामकरण भिन्न प्रकार से किया जाता है।
विजिगीषु के पृष्ठ भाग में स्थित राज्य को पार्ष्णिग्राह कहा जाता है वास्तव में वह पृष्ठ भाग में स्थित शत्रु ही है। तदन्तर क्रमशः आक्रान्द, पार्ष्णिग्राहासार तथा आकान्द्रासार होते है। इसी प्रकार 'विजिगीषु' उसके अग्रभाग में पाँच तथा पृष्ठ भाग के चार राजा मण्ड़ल के अंग माने जाते है। इसी प्रकार मध्यम तथा उदासीन राजा भी होते है। इस प्रकार मण्ड़ल राजाओं की संख्या बारह होती है। इसी कारण उसे द्वादश मण्ड़ल भी कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक राजा की पाँच–पाँच द्रव्य प्रकृतियाँ (अमात्य, कोष, दुर्ग, बल और राष्ट्र) भी होती है। अतः मण्ड़ल के मूल राजा बारह उनकी पाँच–पाँच द्रव्य प्रकृतियाँ 12X5=60 होती है''[6] मण्ड़ल के द्वादश राजाओं की स्थिति इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है

उदासीन

					मध्यम				
आक्रन्दसार मित्र	पार्ष्णिग्राहसार (अरि–मित्र)	आक्रन्द (मित्र)	पार्ष्णिग्राह (अरि)	विजिगीशु	अरि	मित्र	अरिमित्र	मित्रमित्र	अरिमित्र–मित्र

1. विजिगीषु

कोई भी राजा विजिगीषु हो सकता है उसके समीपवर्ती राजाओं का नामकरण उसी के सम्बन्ध में किया जा सकता है लेकिन विजिगीषु की संज्ञा. प्राप्त करने के लिये राजा में कुछ गुण होना आवश्यक था।

भाष्यकारों के अनुसार उसे विजयाकांक्षी तथा उत्साह से पूर्ण होना चाहियें इसके अतिरिक्त उसे अमात्यादि प्रकृतियों का समर्थन भी प्राप्त होना चाहिये। (''प्रज्ञोत्साह गुण प्रकृति समर्थो विजिगीषुः'')[7]

कामन्दक अपने नीतिसार में विजिगीषु के उपरोक्त गुणों पर प्रचुर प्रकाश डालते है। उनके अनुसार ''विजिगीषु द्रव्य प्रकृतियों से युक्त, उत्साह सम्पन्न एवं अन्य राजाओं पर विजय की इच्छा से अनुप्रेरित होता है।''[8]

आचार्य सोमदेव के अनुसार ''विजिगीषु को उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त दैवी कृपा से युक्त भी होना चाहियें।''[9] कौटिल्य ने ऐसे राजा को विजिगीषु कहा है जो आत्मसम्पद एवं अमात्यादि द्रव्य प्रकृति से सम्पत हो व नये का अनुसरण करे।[10]

2.. मित्र

राजमण्ड़ल या मण्ड़ल का महत्वपूर्ण घटक मित्र है। मण्ड़ल के अन्तर्गत इसका स्थान आरि के अनन्तर होता है। दूसरे शब्दों में 'अरि' का राज्य विजिगीषु और मित्र राज्यों के मध्य में स्थित होता है।

हमारे प्राचीन राजनीतिकारों ने मित्र को राज्य का अंग मानकर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि कोई भी राज्य बिना राजनीतिक गठबन्धन के स्थिर नहीं रह सकता है। अतः अन्य राज्यों से उसे मित्रता स्थापित करना वाहियें।

विभिन्न प्रकार के मित्र एवं उनके गुणों पर हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है।

मित्र के महत्व को जानते हुये राजा अपने शत्रु तथा उसके मित्रों में भेद उत्पन्न कराने का पूर्ण प्रयास किया करते थे।

ऋग्वेद में दाशराग्य युद्ध के अवसर पर मित्र परस्पर मिलकर सुदास पर आक्रमण करते है।

रामायण, महाभारत में मित्रता के प्रचुर उदाहरण मिलते है। कौटिल्य भी अर्न्तराज्यीय सम्बन्धों की सफलता के लिये मित्र राष्ट्रों को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताते है।

उन्होंने मित्र तथा उसके साथ सम्बन्धों की विवेचना करते हुये अपने पूर्वाचार्यो के मतों का सविस्तार विवेचना की है। उनके अनुसार पारस्परिक उपकार की भावना ही मित्रों का प्रधान लक्षण ही है। ''भवत्युपकार लक्षणं मित्रमित।''[11]

प्राचीन विद्वानों ने गुण तथा सामर्थ्य के अनुसार मित्रों का वर्गीकरण किया है। महाभारत में शान्तिपर्व में चार प्रकार के मित्रों का उल्लेख मिलता है। सहार्य सहज, भजनमान, सहज कृत्रिम। रामायण में दो प्रकार के मित्रों का उल्लेख है –

1. जो मित्र अर्थसाधन में तत्पर हो।
2. जो मित्र सत्य व धर्म पर आश्रित रहते है।

कौटिल्य ने तीन प्रकार के मित्रों का उल्लेख किया है –
1. प्रकृति, 2. सहज 3. कृत्रिम।...[12]

प्रकृति मित्र वह होते है जिनके मध्य में एक अन्य राज्य का व्यवधान रहता है। उदाहरणार्थ–विजिगीषु का मित्र वह राजा है जिसका राज्य 'अरि' के राज्य के पश्चात् स्थित होता हैं।

सहज मित्र माता–पिता के द्वारा सम्बन्धित होते है।

कृत्रिम मित्र वह है जो धन व जीविका हेतु मैत्री स्थापित करता है। तीनों प्रकार के मित्रों में प्रकृति मित्र प्रकार का मित्र ही मण्ड़ल प्रसंग में मान्य है।

आचार्यो ने सद्मित्र के गुणों की भी व्याख्या की है।

रामायण में राम कहते है ''सच्चा मित्र वहीं है, जो अपने मित्र के सुख, दुख में समान व्यवहार करता है। राम ने स्वार्थ सिद्ध तथा कृतध्न मित्रों को निन्दित बताया है।''[13]

कौटिल्य कामान्दक सोमदेव आदि प्राचीन आचार्यो के अनुसार मित्र राजा को उन्हीं गुणों से युक्त होना चाहिये जो विजिगीषु में अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त उसे विजिगीषु के प्रति सच्ची निष्ठा तथा उपकार की भावना से अनुप्रेरित होना चाहियें। ऐसा गुण सम्पन्न मित्र ही विजिगीषु की उन्नति में सहायक होता है।

हमारे प्राचीन विद्वतजनों ने माना है कि मित्रता व शत्रुता स्थायी नहीं होती है। परिस्थितिवश मित्र शत्रु व शत्रु मित्र बन जाता है। भारत के प्राचीन इतिहास से भी इस सिद्धान्त की पुष्टि हो जाती है। इसलिये ही हमारे आचार्यो ने मित्र के प्रति

सम्यक व्यवहार करने की कोशिश करने का आदेश दिया है जिससे मित्रता में व्यवधान उत्पन्न न हो। यद्यपि सभी ने मित्र के साथ मैत्रीपूर्ण निष्कपट व्यवस्था करने का आदेश दिया है, परन्तु वे मित्र नीति मे सावधानी का आदेशा देते है।

1. अरि (शत्रु)

मण्ड़ल सिद्धान्त में अरि ऐसे राजा को कहते है जिसके राज्य की सीमा विजिगीषु की सीमा में मिलती है। सीमा सम्बन्धी विवादों के कारण निकटवर्ती राज्यों में प्रायः विग्रह बना रहता है। ऐसे राज्यों में विजिगीषु के अग्रभाग में स्थित राज्य व पृष्ठ भाग दोनों ओर से ही हो सकते है। ऐसे में भिन्नता व्यक्त करने के लिये राजनीतिकारों ने अग्रभाग स्थित राज्य के स्वामी को ''अरि'' और पृष्ठभाग में स्थित राज्य के स्वामी को ''पार्ष्णिग्राह'' कहा है। इन दोनों के गुण समान है केवल नाम भिन्न है। सोमदेव कहते है ''यह आवश्यक नहीं कि पडौसी राजा अरि और दूरस्थ राजा मित्र हो। सानिध्य व दूरी शत्रुता मित्रता का कारण नहीं होता। सामान्य उद्देश्य के कारण ही मित्र अथवा शत्रु बनते है। लेकिन वे भी स्वीकार करते है कि पडौसी राजा भी बहुधा शत्रु हो जाते है।''[14]

शत्रु और मित्र का कोई लेखा नहीं मिलता है। लेकिन फिर भी हम कह सकते

है जो जिसकों संताप दे वहीं उसका शत्रु है।

भीष्म उनको राजा का शत्रु मानते है जो राजा की हानि व विनाश के इच्छुक होते है।[15]

प्राचीन आचार्यो ने मित्र की भांति शत्रु का भी वर्गीकरण किया है। कौटिल्य शत्रु को तीन वर्गो में विभाजित करते है प्रकृति शत्रु, सहज शत्रु, कृत्रिम शत्रु।

विजिगीषु की राज्य की सीमा से सम्बद्व राज्य का स्वामी प्रकृति शत्रु और उसके अपने ही वंश में उत्पन्न दायभागी सहजशत्रु हो जाते है अथवा किसी को विरोधी बना देते है।

प्राचीन आचार्यो ने शत्रु के प्रति नीति के कुछ नियामक निर्देश भी निर्धारित किये है। प्रायः सभी आचार्य यह स्वीकार करते है कि विजिगीषु को अपने शत्रु को समूल नष्ट कर देना चाहिये। आचार्य कणिक तो यहाँ तक कहते है कि ''शरणागत शत्रु भी उपेक्षा करने योग्य नहीं है। जो राजा दुर्बल तथा नतमस्तक शत्रु को अवसर

पाकर भी नष्ट नहीं करता वह अपनी मृत्यु को स्वयं आमंत्रित करता है।''[16] अतः शत्रु को कभी अविशिष्ट अर्थात शेष नहीं छोड़ना चाहिए। कौटिल्य का स्पष्ट कथन है कि ''दुर्बल राजा भी बलशाली राजा का आश्रय ग्रहण कर भयंकर सिद्ध हो सकता है अतः उसका उच्छेदन कर देना ही उचित है।''[17]

राजा को अपने गुप्तचरों द्वारा शत्रु की दुर्बलता को परिलक्षित कर, उसकी शक्ति क्षीण करनी चाहिए। शत्रु के मित्रों तथा उसकी सेना में भेद उत्पन्न करना प्रजा में विरोध भावना की सृष्टि करने का प्रयास करना चाहिए। लेकिन अपनी अपेक्षा बलशाली शत्रु में विग्रह उचित नहीं माना गया है। जब शत्रु की स्थिति कमजोर हो व अवसर अनुकूल हो तो शत्रु पर प्रहार करना चाहिए।

1. मध्यम राजा

विजिगीषु एवं अरि की सीमाओं से मध्यम राजा का राज्य होता है। यह राजा भी शक्ति, सम्पन्न व विजिगीषु तथा अरि दोनों पर ही अनुग्रह एवं निग्रह करने में समर्थ होता है। किन्तु कारणवश मध्यस्थता धारण किये रहता है।

2. उदासीन राजा

उदासीन राजा का राज्य, विजिगीषु, अरि मध्यम राजाओं के राज्य से कुछ दूर स्थित होता है। यह राजा भी अन्य राजाओं की भांति शक्ति सम्पन्न तथा अन्य तीनों पर निग्रह व अनुग्रह करने में समर्थ होता है। सोमदेव के अनुसार ''उदासीन राजा उसे कहना चाहिए जो समर्थ होने पर भी किसी राजा के द्वारा दूसरे राजा पर आक्रमण किये जाने पर भी निष्क्रिय बैठा रहता है।''[18]

कौटिल्य के अनुसार कौटिल्य विजिगीषु को आदेश देते ''यथासाध्य मध्यम तथा उदासीन के साथ अच्छे संबध बनाये रखने का आदेश दिया है क्योंकि मध्यम तथा उदासीन से अरि की मित्रता विजिगीषु के लिये हानिकारक हो सकती है।''

कौटिल्य इस बात पर बल देते है कि ''विजिगीषु अपने मित्रों को मध्यम राजा के पक्ष में न जाने दे अन्यथा उसकी शक्ति क्षीण हो जायेगी यहीं नहीं यदि मध्यम राजा उदासीन राजा की मित्रता प्राप्त करना चाहता है तो विजिगीषु को उन दोनों में भेद उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिये।''[19]

निष्कर्ष

इस प्रकार कौटिल्य का मण्डल सिद्धान्त एक व्यवहारिक व पारदर्शिता पूर्ण सिद्धान्त है। जो तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों के अनुरुप था वर्तमान परिपेक्ष्य में भी कुछ हद तक प्रासंगिक है। आज भी हम देखते है कि भारत के पड़ौसी देश जिनकी सीमायें भारत से मिलती है चाहे पाकिस्तान हो, चीन हो या बांग्लादेश हो। इनका रवैया भारत के शत्रुतापूर्ण ही है। आचार्य कौटिल्य के बताये युद्ध कौशल के बाद, नीतियां व राजनैतिक सिद्धान्त आज भी महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारत के राजनीतिक चिंतंको में तो उसका स्थान सर्वोच्च है ही। प्राचीन भारतीय नीति व अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों को समझने के लिये भी मण्ड़ल सिद्धान्त का दिग्दर्शन आवश्यक है क्योंकि उसी के विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन में मौर्य साम्राज्य के काल में भारत का एकीकरण हुआ था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महाभारत शान्ति पर्व, अध्याय 59, 70–71
2. मनुस्मृति 7, 156
3. कामन्दक नीतिसार 8, 20 से 24 तक
4. मनुस्मृति–अध्याय 7, श्लोक 177
5. नीतिवाक्यामृतम अध्याय 29, श्लोक 49 दीक्षितर – 'वार इन
6. एनशिएन्ट इण्ड़िया – 1948, पृष्ठ 313
7. मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 155 व कुल्लूक का भाष्य
8. नीतिसार, अध्याय 8, श्लोक 6
9. नीतिवाक्यामृतम, अध्याय 29, श्लोक 22
10. अर्थशास्त्र अधिकरण 6, अध्याय 2 श्लोक 16
11. अर्थशास्त्र अधिकरण 7 अध्याय 9, श्लोक 12
12. वही अधिकरण 6 अध्याय 2 27 व 28
13. रामायण किष्किंधा काण्ड–29, 8 से 10 तक
14. नीतिवाक्यामृत–29, 32
15. महाभारत शांतिपर्व 80, 19
16. महाभारत शांतिपर्व 103, 1 व 13 से 15 तक
17. अर्थशास्त्र अधिकरण 7, 44
18. नीतिवाक्यामृतम् – 29
19. अर्थशास्त्र अधिकरण 7, अध्याय 18, 1 से 31 तक
20. 'महाभारत' (हिन्दी अनुवाद सहित), गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0–2026
21. 'श्रीमद्वाल्मीकी रामायण' (हिन्दी अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं0 2045
22. 'कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्' सं0, वाचस्पति गैरोला, वाराणसी, 1962'कौटिल्य अर्थशास्त्रम' टीका–रामतेज शास्त्री, काशी, 1964
23. प्रतिपाद पंचिका, सं0 के.पी. जायसवाल
24. जयमंगल, सं0 जी., हरिहर शास्त्री
25. 'कामन्दकीय नीतिसार', सं0 आर.एल. मित्र, कलकत्ता, 1884
26. 'मनुस्मृति टीका', हरगोविन्द शास्त्री, वाराणसी, 1965
27. 'कामान्दक नीति' (हिन्दी अनुवाद सहित), वेकटेंश्वर प्रेस, मुम्बई
28. 'अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य', सं0, सामशास्त्री, मैसूर, 1924
29. जायसवाल के.पी., 'हिन्दू पॉलिटी', कलकत्ता, 1924
30. नारायण, आर.के. 'महाभारत', दिल्ली, 1978
31. दीक्षितर, वी. आर., 'वार इन एनशिएट इण्डिया', दिल्ली, 1948
32. दीक्षित, प्रेमकुमारी 'प्राचीन भारत में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध', लखनऊ, 1970
33. दीक्षित, प्रेमकुमारी 'रामायणकालीन राजव्यवस्था', लखनऊ, 1971
34. पाण्ड़ेय, श्यामलाल 'कौटिल्य की राजव्यवस्था', लखनऊ, 1956
35. शास्त्री, रघुवीर 'महाभारतकालीन राजव्यवस्था',, मेरठ, 1971